अनेकान्त या स्याद्वाद को एक प्रखर सिद्धान्त के रूप में प्रतिष्ठा प्रदान करने का श्रेय जैन-दर्शन और जैन दार्शनिकों को जाता है।

जो वस्तु जैसी है उसे वैसी ही देखना अनेकान्त है। जैन धर्म के सम्यक्त्व–सम्यक्दर्शन का मूलाधार भी यही है। जो वस्तु जैसी है उसे उसी रूप में न देखने से विकृति उत्पन्न होती है।

प्रत्येक वस्तु के दो पक्ष होते हैं। मनुष्य की दृष्टि किसी एक पक्ष पर ही टिकती है। किसी एक ही पक्ष को देखना और उसी का आग्रह रखना एकान्त है। विश्व की द्वन्द्वात्मक स्थिति का मूल कारण यही एकान्त है। जहाँ-जहाँ एकपक्षी और एकांगी दृष्टि होगी वहाँ-वहाँ विवाद और कलह होगा। इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि जहाँ-जहाँ विवाद और कलह होगा वहाँ-वहाँ एकांगी दृष्टि होगी। वहाँ एक ही पक्ष का आग्रह होता है और वह आग्रह जब दुराग्रह में परिवर्तित होता है तब विग्रह का जन्म होता है।

किसी एक पक्ष से वस्तु पूर्ण नहीं हो सकती। अगर वह पूर्ण होगी तो दो पक्ष से ही पूर्ण होगी। इसलिए दो पक्ष प्रत्येक पूर्ण वस्तु की वास्तविकता है। यह उसकी सच्चाई है फिर दोनों पक्षों के स्वीकार में संकोच क्यों होना चाहिए।

अनेकता में एकता हमारे गणतंत्र देश का बहुप्रचलित सूत्र है। यह अनेकता में एकता अनेकान्त ही है। संसार में अनंत अनेकताएँ–भिन्नताएँ हैं। बावजूद इन सभी अनेकताओं और भिन्नताओं में कोई न कोई ऐसा तत्त्व है जो एक है, जो समान है, जिसे सभी स्वीकार करते हैं।

इन अनेकताओं में से जो एकता का तत्त्व है, उसे ढूंढ़ लो और उसी को स्वीकार कर लो। एकता स्वीकार करने का यह अर्थ नहीं कि अनेकान्त अनेकता का विरोध करता है। नहीं, अनेकान्त कभी किसी का विरोध नहीं करता। जहाँ विरोध होगा वहाँ अनेकान्त नहीं रहेगा। अनेकान्त निर्विरोध है। जहाँ विरोध होगा वहीं एकान्त आकर खड़ा हो जाएगा। विरोध का अर्थ ही एकान्त है। अनेकान्त तो वस्तु को देखने-परखने की एक दृष्टि प्रदान करता है।

इस तरह अनेकान्त के अनेक व्यावहारिक पहलू है। संसार के कल्याण के लिए ही सर्वज्ञ अरिहंत ने इन सिद्धान्तों की प्ररूपणा की थी। उनके प्रत्येक सिद्धान्त में संसार के सुखी होने का रहस्य छिपा हुआ है। चाहे वह अहिंसा का सिद्धान्त हो या अपरिग्रह का या अनेकान्तवाद का। इन शाश्वत सिद्धान्तों को अधिक से अधिक व्यावहारिक जगत् में लाने का उत्तरदायित्व जिन भगवान के अनुयायी प्रत्येक जैन का है। ● ●

सत्य की खोज

–डॉ. जगदीश चन्द्र जैन

प्राचीन शास्त्रों में सत्य की महिमा का बहुत बखान किया गया है। उपनिषद् का वाक्य है–सत्यं वद, धर्मं चर, यानी सच बोलो और धर्म का आचरण करो। लेकिन सत्य है क्या? सत्य तक कैसे पहुँच सकते हैं?

शंकराचार्य का कथन है–'**ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या**' अर्थात् केवल ब्रह्म ही सत्य है और बाकी सब मिथ्या है। लेकिन ब्रह्म क्या है?

ऋग्वेद में स्तुति के अर्थ में ब्रह्म शब्द का प्रयोग किया गया है। अथर्ववेद में ब्रह्म शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग मिलता है। वेदों के सुप्रसिद्ध टीकाकार आचार्य सायण ने विविध अर्थों में ब्रह्म शब्द का प्रयोग किया है।

यज्ञ-याग-प्रधान वैदिक ग्रन्थों में यज्ञ को ही सत्य कहा है। तत्कालीन समाज में यज्ञ-यागों के माध्यम से ही मनुष्य परमात्मा के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम माना जाता था। देवासुर-संग्राम में, कहते हैं कि देवगण सत्य का आश्रय लेने के कारण बलहीन और असुरगण असत्य का आश्रय लेने के कारण बलवान बन गये। अंत में देवों ने भी यज्ञ का आयोजन किया और उसके बल से उन्हें विजय प्राप्त हुई। अन्यत्र यज्ञ के अतिरिक्त तीन वेद, चक्षु, जल, पृथ्वी और सुवर्ण आदि को सत्य कहा है। इससे जान पड़ता है कि उस समय सत्य का अस्तित्व के अर्थ में प्रयोग प्रचलित था, यथार्थ भाषण से इसका सम्बन्ध नहीं था।

वस्तुतः सच या झूठ बोलने की कल्पना आदिम कालीन जातियों की उपज नहीं है। यह कल्पना उस समय की है जब मनुष्य की आर्थिक परिस्थितियों में उन्नति होने के कारण कायदे- कानून और धार्मिक व्यवस्था की आवश्यकता महसूस होने लगी। पूर्व काल में यह व्यवस्था नहीं थी क्योंकि मानव का जीवन बहुत सीधा-सादा एवं सरल था। वह नैसर्गिक शक्तियों में कल्पित देवी- देवताओं को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ-याग का अनुष्ठान करने में ही अपनी सारी शक्ति लगा देता था। यज्ञ-याग का यही आर्थिक मूल्य भी था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय दर्शन में सत्य की खोज

भारतीय दर्शन में सत्य को प्राप्त करने के लिये जितनी उछल-कूद, जितना संघर्ष दिखाई देता है, उतना अन्यत्र दिखाई नहीं देता। उपनिषद्-साहित्य सत्य पाने की इस खोज से भरा पड़ा है। सत्य क्या है? ब्रह्म क्या है? सृष्टि क्या है? सृष्टि का आधार क्या है? क्या आकाश और पृथ्वी एक दूसरे से जुड़े हैं जो गिर नहीं पड़ते? पहले क्या था? सत् या असत्? क्या पूर्वकाल से सर्वत्र जल ही जल था? फिर जल से पृथ्वी, अन्तरिक्ष, आकाश, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, जंगली जानवर और कीट-पतंग पैदा हुए। बृहदारण्यक उपनिषद् ५.१) ? इस प्रकार के ऊहापोहात्यक विचार जगह-जगह दिखाई देते हैं जिससे उपनिषद्कारों की असीम जिज्ञासा का अन्दाजा लगाया जा सकता है। यही भारतीय दर्शन की शुरुआत है जिसमें जिज्ञासा की ही मुख्यता है।

प्राचीन यूनानी साहित्य में भी इसी जिज्ञासा वृत्ति के दर्शन होते हैं। यूनान का महान् विचारक सुकरात जीवन में जिज्ञासा वृत्ति को छानबीन करने की वृत्ति को मुख्य मानता था। उसका कहना था कि–यदि इन्सान में यह वृत्ति नहीं हो तो उसमें रह ही क्या जाता है? वह निष्प्राण है। प्लेटो ने यूनानवासियों में बालकों जैसी सुलभ बाल्यावस्था की–जिज्ञासा वृत्ति की–प्रशंसा की है। उसने अपने तीस से अधिक लिखे हुए संवादों में इसी जिज्ञासा वृत्ति को प्रोत्साहित किया है जिनमें वह राजनीति जैसे गम्भीर विषयों पर चर्चा किया करता और जहाँ निष्कर्ष का प्रश्न आता उसे वह अपने पाठकों पर छोड़ देता।

चीन के सुप्रसिद्ध विचारक लाओ-से ने एक सचमुच के भलेमानस व्यक्ति के बारे में कहा है–

"वह प्रेरणा देता है लेकिन उसके स्वामित्व को स्वीकार नहीं करता, वह क्रियाशील है लेकिन उसका दावा नहीं करता, वह योग्यता से सम्पन्न है लेकिन उसका कभी विचार नहीं करता, और क्योंकि वह उसका विचार नहीं करता इसलिए उससे उसका छुटकारा नहीं।"

लेकिन त्रासदी यह है कि सचमुच का भलामानस व्यक्ति कैसे बनाया जाये!

संस्कृत में श्लोक है–

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्ति।

अर्थात् धर्म को जानते हुए भी मैं उसमें प्रवृत्त नहीं होता, और अधर्म को जानते हुए भी मैं उससे निवृत्त नहीं हो पाता।

एक शराबी इस बात से भलीभाँति परिचित है कि शराब पीना अच्छा नहीं, फिर भी वह अपनी आदत से लाचार है, शराब की गंध पाते ही उसके मुँह में पानी आ जाता है और उसे पीने के लिए वह मचलने लगता है।

अनेकान्तवाद

अनेकान्त वाद का सिद्धान्त हमें व्यापक दृष्टि प्रदान करता है, सहिष्णु बनने के लिए प्रेरित करता है। अनेक वर्ष पूर्व जैन-दर्शन के प्रकाण्ड पण्डित उपाध्याय यशोविजय जी लिख गये हैं–

"अनेकान्तवादी समस्त नयरूप दर्शनों को उसी वात्सल्य दृष्टि से देखता है जैसे पिता अपने पुत्रों को, फिर किसी को कम और किसी को ज्यादा समझने की बुद्धि उसकी कैसे हो सकती है। जो व्यक्ति स्याद्वाद का सहारा लेकर, मोक्ष प्राप्ति के उद्देश्य को सामने रखकर समस्त दर्शनों में समभाव रखता है, वही शास्त्रवेत्ता कहलाने का अधिकारी है। अतएव माध्यस्थ भाव शास्त्रों का गूढ़ रहस्य है, यही धर्मवाद है, शेष सब बच्चों की बकवास है; तथा माध्यस्थ भाव की प्राप्ति होने पर एक पद का ज्ञान भी पर्याप्त है, अन्यथा करोड़ों शास्त्रों के पठन करने से भी कोई लाभ नहीं–इस बात को महात्मा पुरुषों ने कहा है।" (अध्यात्मसार)

लेकिन क्या इन सब बातों का बार-बार स्वाध्याय करते रहने पर भी हमने अपने मटमैले मन को शुद्ध किया? क्या हमने गच्छ, बादों और आचार-विचार सम्बन्धी साम्प्रदायिक मतभेदों से ऊपर उठकर सच्चा अनेकान्तवादी बनने का प्रयत्न किया?

लगता है, सत्य की खोज अभी जारी है, अभी तक हम सत्य की पहचान करने में असफल रहे हैं।

आशा है, हमारी यह मंजिल जल्दी ही पूरी होगी और एक दूसरे के प्रति सद्भावना शील रहते हुए हम पिछड़ी हुई प्रचलित परम्पराओं को उखाड़ फेंकने में सफलता प्राप्त करेंगे।

पता–
१/६४, मलहार को-ओप. हाऊसिंग सोसाइटी
बांद्रा, रैक्लेमेशन (वेस्ट)
बम्बई - ४०० ०५०

❀ अहिंसा के सामने हिंसा बालू की दीवार की तरह बैठ जाती है।

❀ जिसका वैराग्य जाग गया है, उसे फिर मोह की जंजीरें नहीं बांध सकतीं।

–उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org